काव्याकाश का उज्वल नक्षत्र

वीराङ्गना वीरा।

लेखकः—

ठा० भगवतसिंह 'विशारद'

प्रकाशक—

महालचन्द बयेद प्रोप्राइटर—

ओसवाल प्रेस

१९, सीनागोग स्ट्रीट, कलकत्ता।

प्रथम संस्करण १०००]

मूल्य ॥)

मुद्रक—
महालचन्द बयेद
ओसवाल प्रेस
१६, सोनागोग ष्ट्रीट,
कलकत्ता।

दो० जय जय जय जगदम्बिका, जय जय जय असुरारि।
दीन जाति रक्षा करहु, मेरी भूल बिसारि॥

इतिहास प्रेमी पाठकों को महाराणा उदयसिंह का अधिक परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है। इनकी शारीरिक शक्ति प्रसन्शनीय थी किन्तु कादर्यता, दुर्व्यसन तथा विषय कूट २ कर भरा था। इनके २५ राणियाँ थी। किन्तु कठिन कार्यों में राणाजी सदैव अपनी परम प्रिय उपपत्नी वीराङ्गना वीरा ही से परामर्श लिया करते थे। यद्यपि यह उनकी उपपत्नी थी किन्तु राणाजी इसके अपूर्व सौन्दर्य एवं गुणों पर इतने मोहित थे कि वे इसकी एक भी बात टालने में सर्वथा असमर्थ थे इसी सती सिरोमणि के सच्चे पतिव्रत धर्म, देश प्रेम, जात प्रेम, स्वाधीन प्रियता तथा अपूर्व शौर्यतादि गुणों के वर्णन करने में मैं भी अपनी मंद लेखनी पुनीत करना चाहता हूं। पाठक गण प्राचीन सत्पुरुषों एवं सती शिरोमणि महिलाओं का इतिहास जानना, प्रत्येक सत्पुरुषों का परम कर्तव्य है। किन्तु गद्य लिखित इतिहास के पढ़ने में प्रायः बहुत कम लोगों का चित्त प्रवृत्त होता है,

अस्तु इसी आधार पर मैंने यह पुस्तक पद्य छन्दों (हरि गीतिका) में निर्माण किया है। किन्तु पाठक प्रवर मेरा यह प्रथम उद्योग है, कवि तो क्या मै एक साधारण लेखक भी नहीं हूं, तथापि मातृभाषा-प्रेम ने मुझे इसे पद्य ही में लिखने को अग्रसर किया है। मैं स्वयं ही जानता हूं कि मेरी तुच्छ तुकवन्दी पर सुकविगण हंसेंगे। परन्तु यह सोच कर की जहां पर सुकवि गण अपनी सुललित कविताओं से मातृभाषा की सेवा कर रहे हैं, वहां मुझे भी जैसे हो सके उसकी सेवा करने का अधिकार है। मैंने यह धृष्टता की है, अस्तु साहित्य मर्मज्ञों से प्रार्थना हैं कि वे मेरी तुच्छ कविताको प्रेमकी दृष्टि से देखेंगे, यह पुस्तक निरा कपोल कल्पित नहीं है। वरन् ऐतिहासिक है हाँ मैने इस पुस्तक में बहुतसी वाते इतिहास के प्रतिकूल अपनो तुच्छ कल्पना एवं अनुमान से भी लिख दिया है आशा है पाठक गण मेरी इस कोरी कल्पना कविता एवं तुच्छ अनुमान की त्रुटियों पर ध्यान न देकर केवल भाव पर ही ध्यान देनेकी कृपा करेंगे।

यदि यह पुस्तक कुछ भी उपयोगी सिद्ध हुई तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा मुझे इस पुस्तक के लिखने में जिन पुस्तकों तथा कविताओं से सहायता मिली है, उनके लेखकों एवं कवियों के निकट मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हुआ अपनी इस धृष्टता की क्षमा माँगता हूं।

पो० हनुमानगंज
ग्रा० जमुनीपुर

भगवतसिंह (विशारद)

(३)

है जिस समय का दृश्य यह सम्राट था अकबर यहां,
जिसकी परम रण विज्ञता की ख्याति थी सारे जहां।
सम्पूर्ण भारत उस समय परतंत्र था हा! बन गया,
कर्त्तव्य गौरव मान का था ज्ञान दीपक बुझ गया।

(४)

हा! वीर पुङ्गव नृपतिगण जो क्षत्रियों में खास थे,
कर्त्तव्य सारे छोड़ अपने बन गये सब दास थे।
नृप वीरवल टोडर प्रभृति वर मंत्र दाता थे जिसे,
सामर्थ्य थी किस को अहो! जो शिर झुकाता नहिं उसे।

(५)

इक रोज निज दर्बार में सम्राट अकबर हर्ष से—
थे कह रहे पृथिराज से यों मत्त हो उत्कर्ष से—
ऐ वीर पुङ्गव! भूपवर! क्या हिन्द में मेरे लिये,
है शेष कोई नृप अभी आधीन करने के लिये?

(६)

यह दर्प पूरित वाक्य सुन उत्कृष्ट दर्पावेग में,
कहने लगे पृथिराज यों दृग दिये तीखी तेग में।
यद्यपि परस्पर द्वेष मे है जल रहा भारत सभी,
जात्याभिमानी नृप कहीं क्या मान तज सकते कभी?

(७)

क्या वीर वर चित्तोर पति भी तव शरण मे आ गये?

सांगादि उज्वल कीर्त्ति पर क्या निविड़ नीरद छा गये ?

माना उदयसिंह अहर्निश विषयादि में आशक्त है,

पर वीर क्षत्रियगण अहो ! क्या नीद मे उन्मत्त है ?

(८)

सुन बात यह अभिमान की अति क्रुद्ध होकर असि लिये,

कहने लगा पृथिराज से यों अधर रदनन तलदिये ।

चित्तोड़ चातुर्दिक अहो जो शीघ्र नहि अवनत करूं,

तो कसम है अल्लाह की तलवार नहिं करमे धरूं ।

(९)

फिर उठ अनोखे ढङ्ग से सम्भ्रान्त क्रोधित भाव से,

निकटस्थ चर से बात यह कहने लगा अति ताव से ।

अब शीघ्र ही आदेश मेरा उदयसिंह से जायके,

इस भांति से अति स्पष्टता से बोलना समझायके ।

(१०)

नृप ! मित्रता स्वीकार करके शाह को कर दीजिये,

वा पूर्व गौरव याद कर सामाल रण का कीजिये ।

उपरोक्त आज्ञा शीश धर अति प्रबल दुर्मद मद भरा,

चित्तोड़-पति महिपाल पै चर चल दिया अति ही त्वरा ।

(११)

चित्तोड़-पति दर्बार में वह जिस समय पहुंचा वहां,
कादर्य पारावार में ज्यों बह गया तत्क्षण महा।
पर धैर्य धर आदेश अकबर शाह का अति चाव से,
नर केसरी नृप उदयसिंह से कह दिया सद्भाव से।

(१२)

चर-कथित सब वृत्तान्त सुन नृप उदय सिंह हृद्धाम में,
क्रोधाग्नि की ज्वाला लगी ज्यौं तीव्र विद्युद्दाम में।
सहसा परम आवेगमें खर खड्ग ले उन्मत्त से,
वीराङ्गना वीरा निकट पहुंचे सपदि दुर्व्यस्त से।

(१३)

सित सुभग सुन्दर सेज पर थी उस समय वह सो रही,
शुचि सकुच अनुनय विनय अनुपम नींद-वश थी खो रही।
आलोक मुख उस सद्म में अति रुचिर था वह हो रहा,
सह छवि क्षपाकर अमित हो पर्यंक पर जनु सो रहा।

(१४)

बिखरे हुए कच कल कपोलों पर पड़े जो थे अहा!
मानो उरग लहरा रहे है अरुण सरसिज पर महा।
था शुभ्र मौक्तिक माल ग्रीवा बीच ऐसा छाजता,
मानो क्षपाकर विमल तारक मण्डली युत राजता।

(१५)

अवलोक निद्रित नृप उसे पग टेक निज पर्यङ्क से,
कहने लगे मनमें अहा! यह है द्वितीय मयङ्क से।
निज एक कर कल कञ्ज से कर ऐंच वीरा का अहा!
जागृत किया नरनाथ ने उस गाढ़ निद्रा से महा।

(१६)

अवलोक निज प्राणेश को धर धैर्य वीरा चावसे,
सादर युगल पद वन्दि के कहने लगी सद्भाव से।
हे हृदय वल्लभ! आज यह कैसा तुम्हारा वेष है,
क्या आज इस संसार से होना किसी का शेष है?

(१७)

वह धीरता गंभीरता शुचि सौम्यता मुखकी अहो,
प्राणेश! सहसा क्या हुई? हा तनिक तो मुझसे कहो।
मुझ निर्बला अबला निकट इस भांति वीरावेश का,
था कार्य्य ऐसा कौन प्रभु! हत भागिनी पर द्वेष का।

(१८)

मृदु हाव भाव कटाक्ष सहसा आज तव कहँ खो गए,
हा! वे सरस वच, हास्य अनुपम प्रभु! कहो क्या होगए।
प्राणेश! क्रोधातुर कहो भ्रुव भंग यों क्यों हो रही,
अवलोक यह तव वेष मैं हूं शोक जल जाती यही।

(१६)

क्या इस भयङ्कर क्रोधका कुछ मर्म मैं भी हे विभो !
हूं श्रवण कर सकती अहो ! तव बदन पंकज से प्रभो !
हा क्या किसी हत भाग्य का अब भाग्य तारा खो गया ?
अथवा मुझी हत भागिनी से दोष कोई हो गया ?

(२०)

किस दुष्ट की सामर्थ्य है संसार में ऐसी अहो !
संग्राम में जो आप के हैं सामने टिकता कहो ?
मैं तुच्छ अबला निर्बला हूं किन्तु तव आदेश से,
भञ्जन करूं उस दुष्ट को कर खड्ग लै आवेश से।

(२१)

जिसका मुझे संदेह था वह अन्त में हो ही गया,
प्राणप्रिये ! प्राणेश्वरी ! वह सौख्य सब खो ही गया।
हा ! आज तक जो सौख्य की निद्रा में था मैं सो रहा,
है इस समय उस कृत्य पर ही क्लेश इतना हो रहा।

(२२)

हे वल्लभे ! प्राणाधिके ! सुभगे ! सुशीले ! सतवती !
धीरे ! विनम्रे ! परम रम्ये ! चारु चित्ते ! गुणवती !
हृदयेश्वरी ! प्राणप्रिये ! अपराध क्या तुम से कभी,
होगा कहीं हा स्वप्न में भी जन्म भर अणुमात्र भी ?

(२३)

दिल्लीश अकवर शाह ने आदेश मम दरबार मे,
है आज यह भेजा प्रिय उत्कृष्ट क्रोधोद्गार मे।
मम मित्रता स्वीकार कर निज राज-कर अव दीजिये,
अथवा प्रबल रणरङ्ग पर मन शीघ्र नृपवर! दीजिये।

(२४)

क्या राज-कर स्वीकार करना ही हमें अब चाहिए?
अथवा तुमुल संग्राम हित कटिवद्ध होना चाहिए?
पर, विश्व है जिसके प्रिये आधीन अति उत्साह से,
हूं जीत सकता क्या कभी संग्राम में उस शाह से?

(२५)

नृप मान मानी के सदृस जिसके सुसेवक हैं जहां,
फिर जीत सकता कौन है संग्राम में उससे कहां।
अजमेर, बीकानेर, मागध, वंग, जयपुर देशको,
है कर चुका कर-वश्य वह इस समय सकल प्रदेश को।

(२६)

हैं शूर वीर नरेन्द्र जितने सकल अब उसके लिये,
हैं सर्वदा कटिवद्ध रहते प्राण अर्पण के लिये।
है जल रहा यद्यपि हृदय मम वन्हि क्रोधग्राम में,
पर सर्वदा तम-विवश है आलोक विद्युद्दाममें।

(२७)

अतएव ऐ वर वल्लभे! मम हृदय अस्त व्यस्त को,
दे सान्त्वना हितकारिणी हर शोक भाव समस्त को।
ऐ चारु शीले! धर्म-धीरे! शीघ्र मम कर्त्तव्य को,
कहिये सकल सविवेक अब निज दे सरस वक्तव्य को।

(२८)

है शास्त्र वेद पुराण मे हे भामिनी! ऐसा कहा,
सन्मित्र-सम निज नारि है आपत्ति कार्य्यों में महा।
सुत मित्र दारा बंधु निज वेही जगत मे हे प्रिये।
शोकाग्नि उपशम के लिये जिन प्राण निज अर्पण किये।

(२९)

है विश्व में नारी वही जो कठिन आपद काल में,
होवे सहायक शीश दे निज काल-गाल कराल में।
जिस भांति काया साथ छाया है प्रिये रहती सदा,
रहती अहर्निश नारि त्यों ही स्वामि सहचरि सर्वदा।

(३०)

अतएव निज कर्त्तव्य का पालन प्रिये! अब कीजिये,
इस प्राप्त दुख-दल-दलन को उपदेश मुझ को दीजिये।
हा! किन्तु सहसा नारकी पैशाच अकबर दोष को।
मत भूलजाना ऐ प्रिये कर घोर भीषण रोष को।

(३१)

है शूर वीर नरेन्द्र अकबर पक्ष में यद्यपि सभी,
वीराग्रणी वर वीर क्या हैं समर से डरते कभी ?
चतुरङ्गिणी अगणित चमू हैं यद्यपि उसके पक्ष में,
पर क्या प्रभाकर-तेज छिपता है कहीं घन-कक्ष मे !

(३२)

यद्यपि सुरक्षक शाह के हैं प्रबल भूपति गण सभी,
पर क्या विहंगम वृन्द से भी बाज है डरता कभी ?
अतएव निज कर्त्तव्य का पालन प्रभो ! अब कीजिये,
निज पूर्वजो की कीर्त्ति की लज्जा अवश्य रख लीजिये ।

(३३)

बस नाथ ! उस नर दानवी पैशाच अकबर को अभी,
दे कर सरस रण स्वाद द्रुत भंजन करो दुर्मद सभी ।
हे प्राणवल्लभ ! प्राणप्रिय ! निज देश रक्षा के लिये,
कटिबद्ध रहना ही उचित है, प्राण कर-तल पर लिये ।

(३४)

निज देश रक्षा का अहो जिसको नहीं कुछ ध्यान है ।
प्राणेश ! वह पशु तुल्य है सप्राण मृतक समान है ।
प्रिय देश सेवा ही विभो ! शुभ आपका सत्कर्म है,
संग्राम मे अरि मारना ही क्षत्रियों का धर्म है।

(३५)

अतएव निज सामन्त गण से मंत्रणा करके अभी,
संग्राम की तैयारियां कीजे प्रभो सत्वर सभी।
यदि इस परम शुभ कार्य से सर्दार हों विचलित सभी,
तब भी प्रभो! प्राणेश! विचलित आप नहिं होना कभी

(३६)

है स्वर्ग से भी अधिक प्रिय निज जन्म-भूमि जिसे विभो!
संसार में जीना उसी का सफल है सुखमय प्रभो!
उसके हिताहित मान गौरव का जिसे कुछ ध्यान है,
प्राणेश! तिस के मान का जग में प्रत्यक्ष प्रमान है।

(३७)

निज देश हित निज प्राण अर्पण की जिसे दृढ़ शक्ति है,
पाता सदा स्वर्गीय सुख को सहजही वह व्यक्ति है।
संसार के सुख त्याग जो निज देश सेवा के लिये,
है प्राण-अर्पण हेतु प्रस्तुत भावना निश्चल किये।

(३८)

निज देश-सेवा नाव पै चढ़ भव जलधि जो तर गया,
मरते समय तक देश का उपकार जो कुछ कर गया।
सच्चा सुखद जीवन सफल प्रभुवर! उसी का जानिये,
निज जननि गोदी के जनम का फल उसी का मानिये।

(३६)

जो कार्य बाधा हीन हो फल हीन उसको जानिये,
रण विज्ञ जो रण-विमुख हो कायर उसे प्रभु! मानिये।
अतएव सारे शोक पश्चात्ताप को तज दीजिये,
संग्राम स्थल आगत प्रभो! अरि को पराजय कीजिये।

(४०)

वर मंत्रणा तेरी हृदय धर अब चला दरबार को,
पर देखना ऐसा न हो मत भूल जाना प्यार को।
कहते हुए इस वाक्य को कर खड्ग को धारण किये,
पहुंचे झपदि दरबार में कार्य्यता दारुण किये।

(४१)

आदेश अकबर का सकल सक्रोध वीरावेश मे,
आद्यान्त सब सामन्त गण से कह दिया अति त्वेष में।
वीराग्रणी श्री कृष्णसिंह करि श्रव्य अकबर वृत्त को,
कहने लगे सक्रोध यों दे सान्त्वना नृप चित्त को।

(४२)

उस नीच नर पैशाच अकबर धृष्टता का फल सभी,
तत्काल देना ही उचित है प्राण-भय निज तज अभी।
पैशाच अकबर क्या अहो! यदि कालभी रण हित चढ़े,
क्या प्राण रहते देह में वह एक पग आगे बढ़े?

(४३)

खर खड्ग का आघात सहना क्षत्रियोंका धर्म है,
पर वाक्यों का दुर्घात सहना कायरों का कर्म है।
संसार में जब मान है तो जान है रखना भला,
पर मान बिन इस जान को है त्यागही देना भला।

(४४)

यद्यपि अकब्बर-जालमें है फंस गये नृप गण सभी,
पर क्या कहीं जाय लाभ पाते देश द्रोही भी कभी?
क्या क्षुद्र जम्बुक वृन्द पर जय माल पाकर यवनभी,
संग्राम मे मृगराजके वह ठहर सकता है कभी?

(४५)

जिन चाटुकारों का उसे प्रभुवर! परम अभिमान है,
पहले उन्हीं का समर मे करना हमें सन्मान है।
पर राज-कर देना अहो! स्वातंत्र्य देना है प्रभो!
स्वातंत्र्य-च्युत भी क्या कभी है नरक दे जाते विभो?

(४६)

संसार में स्वाधीनता ही ईश कृत सन्मान है,
रक्षा उचित है अस्तु उसकी जब तलक यह प्रान है।
हे देववर! स्वातंत्र्य तव जिसने किया निर्माण है,
उस ईश को करजोड़ युग श्रद्धा समेत प्रणाम है।

(४७)

हे देव! विषम वियोग तेरा प्राण रहते तो कभी,
होगा नहीं जो देवगण प्रतिकूल होजावें सभी।
पशु पक्षि गण कीड़े मकोड़े अज्ञ होकर भी महा,
हैं जन्म भू के छोड़ने में प्राण भी देते अहा।

(४८)

क्या बुद्धि रखकर भी अहो! अपहरण हम उसका प्रभो!
चुप-चाप यों ही देखले धिक्कार है हमको विभो!
हे जन्म दात्री धात्रि! तव ऋण आशु देना है हमे,
है काल भी क्या देख सकता प्राण रहते तक तुम्हें।

(४९)

है एक दिन मरना सभी को अवश है वीरो! यहाँ,
पर वीर गण! अवसर मिलैगा आज जैसा फिर कहाँ।
यद्यपि यवन पति काल सा है आ रहा इतको चला,
है किन्तु जीने की अपेक्षा मान पर मरना भला।

(५०)

निज देश है तो मान है प्रभु! मान है तो जान है,
जब देश ही कर से गया हतमान तौ धिक जान है।
संग्राम में हो ध्वंस चाहे शीश यह मेरा अभी,
जीवित नहीं दूंगा तदपि अधिकार पैतृक यह कभी।

(५१)

अतएव उसको पत्र प्रभुवर! भेजिये इस मर्मका,
आओ तुम्हे है भोगना फल घोर अपने कर्मका ।
शुचि मित्रता संग्राम में होगी भली आओ यहाँ,
स्वागत तुम्हारे के लिये हम सेन युत प्रस्तुत यहाँ ।

(५२)

उपरोक्त बातें जिस समय दरबारमें थी हो रही,
था श्रवण-गोचर कर रहा निकटस्थ चर बैठा वही ।
करि श्रव्य वह उपरोक्त बातें खिन्नमन निष्कान्ति हो,
कहने लगा करजोड़ यों नृप उदयसिंह के प्रान्तहो ।

(५३)

श्रद्धा समेत प्रणाम यह स्वीकार मेरा कीजिये,
दिल्लीश ढिग हूं जा रहा आदेश नृपवर! दीजिये ।
हां, जाइये कहिये उसे अब शीघ्र आने को यहां,
तैयार हैं सह सैन्य हम अब कर चुकाने को यहां ।

(५४)

लो पत्री यह देना अवश है रण निमंत्रण यह उसे,
चक्खे यहां रणस्वाद उसका भीरु समझा था जिसे ।
सुन बात उनकी दूतने वह पत्र कर से लेलिया ।
नृप उक्तिको रख चित्त में चित्तौर से चर चल दिया ।

(५५)

सम्राट अकबर के निकट वह जिस समय पहुंचा अहा,
निस्तब्धता दरबार में अति छागई अद्भुत महा।
दे पत्रिका तत्क्षण उन्हें वृत्तान्त नृप चित्तौर का,
कहने लगा कर जोड़ यों उस राज कुल शिर मौर का।

(५६)

चलते समय यह पत्रिका दे उदयसिंह आमर्ष मे,
कहने लगे यों मत्त हो उत्कृष्ट क्रोधोत्कर्ष मे।
सह सेन अकबर को सपदि लै आइयो संग्राम में,
है देर करना सर्वथा अनुचित परम शुभ काम में।

(५७)

ए क्या उदय सिंह भी अहो! संग्राम को कटिबद्ध हैं?
क्या प्राण अर्पण हेतु वे भी, सर्वथा सन्नद्ध है?
एं भेक गण भी क्या अहो! पग नाल जड़वाने लगे?
क्या क्षुद्र जम्बुक भी समरको शेर पै आने लगे!

(५८)

शुचि पक्षियों के पंख उनके, जीवनो का हेत है,
पर चीटियों का पंख, उनकी मृत्यु का संकेत है।
जो उदयसिंह के सुख उदय का, अस्त जो मैं ना करूं।
तो कसम है अल्लाह की, नहीं छत्र शिर धारण करूं।

(५६)

तत्काल सेना नाथ को कर लक्ष क्रोधावेश में,
कहने लगा उन्मत्त सों, निश्शेष जलता द्वेषमे ।
मम इष्ट साधन के लिये, नृप उदयसिंह अभिमान को,
कर ध्वन्स सत्वर आइये, शुभ लीजिये सम्मान को ।

(६०)

आदेश पा लेकर असंख्यक, सेन वह अति हर्ष में,
चित्तौर जा घेरा अहो ! चहुं ओर परमामर्ष में ।
हा ! जिस समय यह वृत्त, पहुंचा नृप उदय सिंह कान में,
हो सभय सत्वर कंप-कंपे, कादर्य के उत्थान में ।

(६१)

लेते हुये निःस्वास सत्वर, परम व्याकुलता भरे,
कहने लगे सामन्त गण से, युगल कर मस्तक धरे ।
था प्रथम ही संग्राम से इन्कार मैं करता सदा,
हा ! किन्तु जो हो भाल में, होता वही है सर्वदा ।

(६२)

हा ! दुष्ट पामर यवन गण, चहु ओर मेरे राज्य को,
घेरे हुये हैं इस समय, धिक्कार है मम भाग्य को ।
हा ! भाग्य ही अब सन्धि हित मोहि कर रहा जब वाध्य है,
तो फिर उसे स्वीकार करना ही, हमें अति साध्य है ।

(६३)

अतएव अब मैं जा रहा हूं, सन्धि करने के लिये.
बस सर्बथा उत्तम यही, उपचार है मेरे लिये ।
इस कार्य में हे ! कृष्णसिंह है मत तुम्हारा क्या अहो,
निर्भय उसे सविवेक अब, निष्पक्ष हो मुझ से कहो।

(६४)

नर केसरी श्री कृष्णसिंह, उद्विग्न हो अति त्वेष मे,
कहने लगे यों उदयसिंह से, परम क्रोधावेश में ।
चढ़ शत्रु आया जो प्रभो ! संग्राम क्यो करते नहीं ?
वीराग्रणी क्षत्रिय कभी, हैं समर मे डरते कहीं ?

(६५)

आदेश पालन आप का, करना हमारा धर्म है,
पर देश रक्षा भी प्रभो ! शुभ क्षत्रियो का कर्म है ।
अतएव मैं संग्राम में सह सैन्य जाता हूं अभी,
पर भूल से डरना नही प्रभु ! दुष्ट अकबर से कभी ।

(६६)

कर्तव्य पथ पर सुदृढ़ रहना, सत पुरुष का धर्म है,
प्रभु ! भाग्य पर विश्वास करना, कायरों का कर्म है ।
निज देश रक्षा के लिये, प्रिय प्राण देना धर्म है,
निस्तब्ध हो कर शोक करना, यह महा दुष्कर्म है ।

(६७)

यों सान्त्वना दे नृपति को, सुन्दर सजे इक फौज से,
सह सैन्य रिपुदल मध्य पहुंचे, प्रबल उत्तम ओज से।
हुंकार यों दोनों चमू विच, शूर गण करने लगे,
सोते हुए वर सिंह मानो, प्रबल निद्रा से जगे।

(६८)

तत्काल दोनो सेन विच, खर खड्ग के आघात से,
होने लगा यों घोर रव, जिमि तीव्र विद्युत्पात से।
वीराग्रणी क्षत्रिय सकल, रण में प्रबल हुंकार से,
करने लगे संहार शत्रुन, खड्ग की खर धार से।

(६९)

तत्क्षण मुग़ल सैनिक अनेकों धराशायी हो गये,
सुत, भ्रात, पितु, दारा प्रभृति, निज सर्वदा को खो गये।
नर रुण्ड मुण्ड असंख्य से रण भूमि तत्क्षण भर गई,
निष्पक्ष निर्दय मृत्यु हा! हा! प्राण कितने हर गई।

(७०)

अति प्रबल शस्त्राघात के, आतङ्क से शङ्का भरे,
भागे विपक्षी गण सकल, हिय परम व्याकुलता भरे।
अभिमान यवनों का सकल, यों मिट गया सत्वर वहीं,
दर्पी पुरुष भी क्या कभी, कृत कार्य होते हैं कहीं?

(७१)

यों सप्त वार अजस्र सेना, शाह अकबर की अहा!
भागी पराजित उदयसिंह से, हो व्यथित व्याकुल महा।
सुनि निज पराभव शाह अकबर, क्रुद्ध हो अति दर्प से,
ले प्रबल दल रण हित चला, निश्वास लेते सर्प से।

(७२)

अति प्रबल वाद्य निनाद से, संसार पूरित हो गया,
उड़ती हुई पग रेणु से, आलोक रवि सब खो गया।
ज्योंहीं प्रबल प्रोत्साहिनी, सेना अकब्बर शाह की,
चित्तौर पहुंची वेग से, कर घोर रव अल्लाह की।

(७३)

त्योंही अलौकिक शिविर करि, चहुं ओर कोसों में खड़ा,
पैशाच अकबर दर्प में, निर्भय सदल उसमें अड़ा।
घन कण्ट उपवन के सरिस, रक्षक हुये सैनिक सभी,
थे भङ्ग कर सकते जिसे नहिं इन्द्र भी सहसा कभी।

(७४)

यह वृत्त सुनि नृप उदयसिंह, हो मग्न शोकागार मे,
कहने लगे सामन्त गण से, यों सभय दरबार मे।
आतङ्क जिसका था मुझे, लो आज वह हो ही गया,
शुभ सौख्य मेरा सब अहो! निर्मूल अब हो ही गया।

(७५)

इस वार अकबर है स्वयं, रण हित चढ़ा अति क्रोध में,
है जीत सकते क्या उसे, हम तनिक से अवरोध में ।
जिसके असंख्यक सेन युत हैं, नृपति गण रक्षक अहो,
है जीत सकती क्या उसे, मम सेन मुट्ठी भर कहो ?

(७६)

कादर्य मय यह वचन कहते, सद्य वीरा सद्न में,
पहुंचे सकल कर्तव्य तजि, आसक्त होकर मदन में ।
इस दुष्ट मनसिज ने अनेको, शूर वीर महा वली,
कर्तव्य च्युत कर द्रुत उन्हे, दी स्वान को उपमा भली ।

(७७)

नृपवर उदयसिंह भी इसी के, जाल में फंस कर अहा !
कर्तव्य च्युत होकर अहो, थे वन गये विषयी महा ।
अपने हिताहित कार्य का, इनको नहीं कुछ ज्ञान था,
विषयादि विषय जघन्य पर, दिन रात केवल ध्यान था !

(७८)

विषयादि निन्दित कार्य में, थे लिप्त आठों याम ही,
यह सूख जाते किन्तु थे संग्राम का सुन नाम ही ।
हा ! जिस समय वीरा निकट पहुंचे नृपति निष्कान्ति से,
कहने लगी वह प्रेम मय, ये वाक्य उनसे शान्ति से ।

(७६)

कुसमय, यहां नृपवर ! कहो, आना हुआ क्यो आपका,
हूं जान सकती क्या प्रभो, मैं हेतु तव उत्ताप का ।
निज अनुचरी मोहिं जानि, कृपया भेद निज वृत्तान्त का,
कहिये सकल, क्यों भीत हो ? हे आप काल कृतान्त का ।

(८०)

निज हृदय के अनुताप का क्या भेद कोई सा कभी,
प्राणाधिके ! वर वल्लभे ! तुमसे छिपाऊंगा कभी ।
जिसके प्रवल आतङ्क से, सब लोक शङ्कित हो रहे,
क्रोधाग्नि मे अपनी अनेकों, वीर है जिसने दहे ।

(८१)

जिसके प्रवल खर खड्ग से, वीराग्रणी रण धीर भी,
तज धैर्यता संग्राम में होते विनत वर वीर भी ।
सोई अकवर आज मेरे, ध्वन्स हित संग्राम मे,
आया प्रवल दल साज, अति उत्कृष्ट क्रोधग्राम मे ।

(८२)

हा ! सन्धि ही मेरे लिये अव इस समय उपचार है,
संग्राम का उससे मुझे, अव सर्वथा इन्कार है ।
क्या सत वार अजस्र, उसको आपने जीता नहीं ?
कादर्यता से हाय ! क्या शुभ कार्य सरता है कहीं ?

(८३)

हा! पूर्व जीतों का प्रिय, अब ध्यान हो तज दीजिये.
संग्राम का उससे अहो! अब नाम ही मत लीजिये।
उन पूर्व युद्धों में प्रिये, सम्राट अकबर थे नहीं,
स्वामी बिना संग्राम में, जय-लाभ मिलता है कहीं?

(८४)

उन उक्त युद्धों में प्रभो हा! आप भी तो थे नहीं,
फिर भी पराजय आपकी थी, क्या हुई उस से कहीं?
अतएव उससे युद्ध में. किञ्चित् न डरिये प्रभु कभी,
वह पूर्व संगर तुल्य ही, होगा विमुख रण से अभी।

(८५)

वर वीर क्षत्री गण समर से विमुख हो मुड़ते नहीं,
क्या क्षुद्र जम्बुक-भभकियों से, सिंह हैं डरते कहीं?
अतएव बन कर वीर वर! कर्तव्य अब अपना करो,
मर जाइये निज देश हित, पर-वश न जीते जी मरो।

(८६)

जब तक जगत में मान है, प्रभु! प्राण तब तक धारिये,
हैं प्राण जब तक अङ्ग में कर्तव्य को न विसारिये।
ठहरो, सुनो यह शब्द कैसा, गगन से है आरहा,
कर्तव्य को छोड़ो नहीं हा! प्राण के भय में अहा!

(८७)

अतएव देव ! सदैव कुल की, कान को निर्वाहिये,
इस तुच्छ जीवन के लिये, कुल-कीर्ति को न बहाइये।
निज वन्धुओं के सौख्य का, जिसको नही कुछ ध्यान है,
निज पूर्वजों की कीर्ति का, जिसको नहीं प्रभु ! ज्ञान है ।

(८८)

निज-देश अरु निज-मान का, जिसको नही अभिमान है ।
जीवित मृतक है वह सदा पाता अयश अपमान है।
तुम वीर वंशज हो अहो ! रख लीजिये उस मान को,
प्रभु ! शीघ्र यवनो को दिखा दो, वीर धर्म प्रधान को ।

(८९)

हृदयेश ! यह शुभ समय छिपने, का नहीं है गेह में,
अब जाइये संग्राम में, फंसिये न मेरे नेह मे ।
संग्राम में मर जाइये, वा शत्रुओं को मारिये,
प्रभु ! कायरों की भांति यों आँसू न दृग से ढारिये ।

(९०)

इन इन्द्रियों के है वशी जो मूर्ख है जाता कहा,
अतएव इसके जाल में फंसिये नहीं प्रभुवर ! अहा !
संग्राम में सह-शक्ति लड़ना क्षत्रियों का धर्म है,
फिर जीत हो या हार हो, इसमें न कुछ भी शर्म है ।

(६१)

पर-वश्यता स्वीकार करले हार कर वह दास है,
मम नाथ! उसका लोक में होता परम परिहास है।
हा! मातु के शुचि दूध की लज्जा अगर है आपको,
या है शमन करना अहो, उसके हृदय संताप को।

(६२)

तो शत्रुओं के रक्त से, उनका सपदि तर्पण करो,
या क्षत्रियोचित धर्म हित, निज प्राण को अर्पण करो।
प्राणेश रिपु दल को विना मारे कभी आना नहीं,
देखो समर से भाग करके, नर्क मे जाना नहीं।

(६३)

सुख नींद सोना सेज पर, नहिं क्षत्रियों का काज है,
संग्राम से भय भीत होना, हा! प्रभो अति लाज है।
प्रभु! इस लिये जो निज, कुलोचित, कार्य हो करना वही,
है शूर का मरना सिसक कर, खाट पर अच्छा नहीं।

(६४)

हा! मर्द होकर भी अहो! यों भीरु बनते हो प्रभो!
है पूर्वजों की कीर्ति का, नहीं ध्यान क्या तुमको विभो?
यदि सन्धि करना हो तुम्हे; तो पुरुष के शुभ वेष को,
तजि बैठि रहिये भवन मे, मत मुंह दिखाओ देश को।

(६५)

यह पहन लो मम चूनरी, धरि नारि के सम वेष ही,

शृङ्गार कर सित सेज पर, बैठो संवारो केश ही,

खर खड्ग यह निज हाथ का, हृदयेश ! हमको दीजिये,

ये चूरियां मम हाथ की, निज हाथ धारण कीजिये।

(६६)

रण विजता की हांक भरता है, घमंडी जो सदा,

जिसके प्रबल आतङ्क से, रहते सभय तुम सर्वदा ।

उस दुष्ट अकबर को सुला दूं समर में सत्वर अभी,

सच मानिये क्षत्राणियां, नहीं प्राण भय करती कभी ।

(६७)

हृदयेश्वरी ! तव कथन, मुझको सर्वदा अति मान्य था ,

पर शोक मेरा कर्म ही यों कर रहा अन्मान्य था ।

पर अब प्रिये ! यह वाक्य तेरा, शीश पर निज धार कै,

हूं जा रहा यह शीश दै आऊंगा या रिपु मार कै ।

(६८)

कहते हुए यह वाक्य सम्प्रति, देखके फिर नारि को,

पहुंचे पुनः दरबार में, कर पोंछते दृग वारि को ।

तत्काल सब सामन्तगण को, लक्ष करि अति चाव से,

कहने लगे उत्साह से, यह प्रेम के सद्भाव से ।

(९९)

अब राज से अरि-दल हटाने, के लिये क्या राय है,
कहिये सकल सविवेक हो सोचा जो ठीक उपाय है।
इसके प्रथम जो सन्धि हित, मैं भ्रान्त हो था कह रहा,
वह सर्वथा मम भूल थी, धिक्कार है मुझको महा।

(१००)

मैं पूर्वजों की शूरता, निज क्रूरता की धार में,
हा ! हा ! डुबाता था, मुझे धिकार इस उपचार में।
है युद्ध की चिर वाञ्छना, मम हृदय में यद्यपि महा,
पर सैनिकों संग्राम से, कहिं विमुख नहीं होना अहा !

(१०१)

यदि वश्यता स्वीकार हो, तो युद्ध इच्छा छोड़ के,
प्रस्ताव सम्प्रति सन्धि का, करिये युगल कर जोड़ के।
पर ध्यान रखिये पुनः यह, शुभ समय आवेगा नहीं,
बहता हुआ जल स्रोत वीरो, लौटता है क्या कहीं।

(१०२)

यह लीजिये करवाल मेरा शीश काटो मूल से,
पर वाक्य ऐसा आज से, कहना नहीं प्रभु ! भूल से।
स्वर्गीय सुख स्वच्छन्दता, क्या तनिक से सुख के लिये,
विक्रय करूं यदि दुष्ट को, धिक्कार है मेरे लिये।

(१०३)

मरना सभी को है यहां, संसार नश्वर है विभो!

इस विश्व में जीवित रहेंगे, सर्वदा क्या हम प्रभो?

यह मृत्यु त्यागेगी नहीं, है ज्ञात प्रभुवर! नहिं किसे?

तो आज ही क्यो वेंच दूं, स्वच्छन्दता डर कर उसे।

(१०४)

जिसकी हमारे पूर्वजों ने, आज तक रक्षा किया,

जिसके लिये वे प्राण निज, सादर समर्पण कर दिया।

अब क्या उसी स्वच्छन्दताको, प्राण रहते देह में,

हा! छोड़ना अनिवार्य है, फँस तुच्छ जीवन-नेह में।

(१०५)

चाहे प्रभाकर भ्रान्त हो, पश्चिम उदय होवे सदा,

राकेश निज पथ त्याग कै, हों अस्त प्राची दिशि यदा।

है शेष जबलौं शक्ति तन, तन शेष जबलौं प्राण है,

त्यागूं नहीं यह प्रण कभी, जबलौं करस्थ कृपाण है।

(१०६)

प्रतिफल इन्हें देंगे अवश, हम शीघ्र उनके कृत्य का,

सच मानिये क्षत्रिय कभी, भय मानते नहिं मृत्यु का।

अब भी अगर सन्देह हो, तो लीजिये हम सब अभी,

हैं जा रहे संग्राम को, किञ्चित् न मन मोड़ें कभी।

(१०७)

हम वीर सैनिक हैं प्रभो ! डरते नहीं कुछ जान को,
दे प्राण रक्खेंगे अहा ! निज पूर्वजों के मान को।
श्रीकृष्ण, अर्जुन भीम का, बल है हमीं में शुभ भरा,
वर वीर सांगा-शक्ति से, यह हृदय अब भी है हरा।

(१०८)

यह यवन-सेना युद्ध में है ठहर सकती क्या कभी ?
शुचि स्वाद क्षत्री खड्ग का, इनको चखा देंगे अभी।
अब आइये वर वीरगण निज, देश लाज बचाइये,
निज मातु रक्षा के लिये, निर्भीक शीश चढ़ाइये।

(१०९)

कर दमन अब शत्रुन समर से, बेग सेन भगाइयो,
उन पामरों का दर्प सारा, अबश ही विनसाइयो।
संसार को निज वीरता की, धीरता दिखलाइयो,
निज शौर्य का बल का उन्हें, दे शीघ्र परिचय आइयो।

(११०)

वाक्यावली करि भङ्ग जयमल, शीघ्र परमानन्द से,
कहने लगे संकेत कर, यों सैनिकों के वृन्द से।
वर वीरगण ! भारत-भलाई, है तुम्हारे हाथ मे,
कर्तव्य पर कटिवद्ध हो, तो है विजय तव साथ में।

(१११)

हैं गूंजते अब भी अहो ! जग में हमारे गीत है,
हमसे समर हित सैनिको, हा ! शत्रु अब भी भीत है।
यश की ध्वजा संसार में, चहुं ओर फहरा दो अभी,
निज मातृ महि की विपद्, ज्वाला शान्त कर डालो सभी।

(११२)

संग्राम भूमि शीघ्र शूरो, शत्रु से खाली करो,
इस मातृ भू की आपदा, खर खड्ग से सारी हरो।
पर देखना तुम आर्य हो, यह भूल मत जाना कहीं,
शुभ कीर्ति अपने देश की, जग से उठा देना नहीं।

(११३)

संतान हो तुम भीष्म को, यह भूल नहीं जाना कहीं,
निज प्राण दे दो समर मे, पर मान को देना नहीं।
जो कार्य्य तुम्हरे योग्य है, करके दिखा दो वह अभी,
हां म्लेच्छ ये जिससे पुनः, नहिं समर हित आवें कभी।

(११४)

जिनका प्रबल बल देख कर, हो मुग्ध स्वीय भुजान से,
जयमाल जय श्री ने स्वयं, मेली सुभग सम्मान से।
जिस भानु के आलोक, सन्मुख म्लान होता चन्द्र भी,
तो क्षुद्र प्रभ खद्योत सो, क्या ठहर सकता है कभी !

(११५)

फिर वीर वर येही उदयसिंह, जब हमारे साथ है,
तो जानिये निश्चय हमारे, विजय लक्ष्मी हाथ है।
अतएव अरि-दल-दलन-हित, तज भय सकल मृयमाण का,
प्रस्तुत रहो करमें सदा, कर ग्रहण प्रखर कृपाण का।

(११६)

उपरोक्त बातें श्रव्य करि, गम्भीर घन इव नाद में,
कहने लगे तत्क्षण उदयसिंह यों परम अह्लाद में।
ऐ वीर गण! निज क्रोध तज, हो शान्त अब सुनिये सभी,
है सर्वथा यह सत्य तुम नहिं, पीठ रण दोगे कभी।

(११७)

पर आज रजनी भर हमें, हा! जागना अनिवार्य है,
आलस्य बश ऐसे समय, सोना महा दुष्कार्य है।
तत्काल जयमल कृष्णसिंह, कहने लगे मुद में सभी,
निज देश निष्कण्टक बिना, क्या शूर सोते हैं कभी?

(११८)

अतएव जबतक शत्रुओं से, देश खाली नहिं करैं,
सोना नहीं तब तक हमें, आओ प्रतिज्ञा यह करैं।
बस यों परस्पर वाद में अवसान दिन का हो गया,
आलोक दिन कर का सभी, अवछिन्न होकर खो गया।

(११६)

शुचि स्वर्णमय रवि की प्रभा, विच्छिन्न हो जब खो गई,

तत्काल चारो ओर तम की, घन घटा स्थित हो गई।

लो अब सुधाकर भी सुअवसर, जान परमामोद में,

की प्रकट सुन्दर रजतमय, निज चन्द्रिका चहुं कोद में।

(१२०)

यह कान्ति जब शशि की मनोहर, गगन में फ़ीकी पड़ी,

इत कान्त तारक मण्डली भी, चल पड़ी द्रुत उस घड़ी।

अवसान होना यामिनी का, सन्निकट जाना जभी,

विच्छिन्न कर तम राशि को पव फट गई सत्वर तभी।

(१२१)

शुचि शुक्र वस्त्रा उषा भी, निज जानि शुभ अवसर अहा!

संसार को दर्शन दिया, उत्कृष्ट सुखमा युत महा।

क्रमशः निरन्तर लालिमा, लावण्य मय बढ़ने लगी,

होने लगीं धवलित दिशायें, कालिमा उड़ने लगी।

(१२२)

लख आगमन पति का निकट, पति-प्रेम में राती हुई,

सर्वाङ्ग अरुण विमज्जिता, पूर्वाङ्गना भाती हुई।

प्रिय प्रेयसी सुखमा निरख, अनुरक्त हो आनन्द से,

उत्फुल्ल हो दर्शन दिया, दिन नाथ ने कर-वृन्द से।

(१२३)

शुचि शैत्य सुभग समीर सुरभित सौख्य प्रद था वह रहा,
कर केलि मुकुलित कलिन सों, खेलो खिलो यों कह रहा।
मद मत्त वृन्द मलिन्द भी, यह देख इत उत घूमता
है अर्ध विकसित कलिन का, रस चूमता मुख चूमता।

(१२४)

चहुं ओर पक्षी वृन्द भी, सानन्द वृक्षों पर अहा!
अवलोकि दिन कर की प्रभा, करने लगा कल रव महा
थी उस समय प्रिय प्रकृतिकी, ऐसी मनोहारी छटा,
अवलोक जिसको हृदय का, सब धैर्य जाता था घटा।

(१२५)

पर साज था चित्तौर में कुछ और ही सज्जित अहा!
यह साज जिससे प्रकृति का था, साज रण जंचता वहां।
ज्योंही प्रभाकर की प्रभा, चहुं ओर अति सरसा गई,
त्योंहीं वहां चहुं ओर जय जय कार की ध्वनि छा गई।

(१२६)

पत्तादि जयमल कृष्ण सिंह, सहसैन्य नृप वर पास को,
आये प्रवल उत्कर्ष में, तजि सकल जीवन आस को।
अवलोकि निज सेना उदयसिंह अश्व चढ़ि अति हर्ष मे,
अति प्रोत्साहित कर उन्हें रण हित चले उत्कर्ष में।।

(१२७)

रण वाद्य दोनों पक्ष के, तत्काल ही नादित हुए,
करि श्रव्य, शौर्य प्रवाह में, द्रुत शूर सब प्लावित हुए।
चहुं ओर धौंसा नाद से, संसार पूरित हो गया,
उत्साह भीरुन खो गया, थल व्योम कम्पित हो गया।

(१२८)

वर वीर निकले युद्ध हित, कर ताल दै मैदान में,
कौशल दिखाने धर्म के हित, प्राण के सद्यान में।
यों सोच रक्खा था उन्होंने, कार्य बस इतना करें,
ये स्वर्ग के दो मार्ग हैं, जयमाल पहनें या मरें।

(१२९)

पर भीरुओं की उस समय थी, दशा नहिं जाती कही,
घातें लगे सब ताकने, थी जान लब पर आ रही।
सुन नाम रण का दुम दबा कर, दूर कोसों भागते,
था प्राण ही सर्वस्व उनका, फिर उसे क्यों त्यागते।

(१३०)

पर शूर वीरों की दशा थी, हो रही कुछ और ही,
थे मारते निज शत्रु वा, बनते स्वयं यम कौर ही।
बस शीघ्र दोनो सैन्य बिच, अति तुमुल रण होने लगा,
थल व्योम कम्पित हो गया, हुंकार यों होने लगा।

(१३१)

वर वीर क्षत्रिय गण सकल, निज प्राण प्रियता त्याग कै,
करने लगे संहार अरि गण, परम मुद में पाग कै।
धारा-प्रवाह सुरक्त का, बहने लगा चहुंधा अहा!
मृत देह के थे ढेर होते, भूमि पर पल में महा।

(१३२)

अब उत्तरोत्तर समर की, सिन्धूर्मि यों बढ़ने लगी,
मानो प्रलय की दुर्घटी, अति सन्निकट आने लगी।
कटने लगे दुहुं ओर के, वर वीर अगणित अब वहां,
किसका पता था, शिर कहां, है धड़ कहां वह खुद कहां

(१३३)

शस्त्रास्त्र सज्जित उदयसिंह, शुभ अश्व पर मुद में चढ़े,
करते हुए सेना निरीक्षण, और भी आगे बढ़े।
भीषण चलाते नृपति वर निज, हाथ आयुध जाल को,
जो सामने आता कि बस, होता समर्पित काल को।

(१३४)

तत्काल दोनों सैन्य बिच, समराग्नि यों प्रज्वलित भई,
नर अश्व इभ के भूरि शव से, युद्ध मेदनि भर गई।
मरही गये वर वीर वे, पर वश्यता रिपु की अहा!
स्वीकार उनको थी नहीं, यह दृश्य था अद्भुत महा।

(१३५)

कहिं रुण्ड वीरों के समर विच, हय चढ़े कर असि गहे,
है प्रखर खड्ग प्रहार से, संहार शत्रुन कर रहे।
सीखे हुए हैं अश्व उनके, मार्ग दर्शक बन रहे,
संग्राम में जो शत्रुओं के, यूथ यूथप हन रहे।

(१३६)

धारा धरा पर रक्त की, सरि तुल्य ही देखी गई,
उड़ती हुई पग धूलि नीरद्-वृन्द सी लेखी गई।
था चीखना ही दन्तियों का, मेघ गर्जन सा महा,
करवाल थी बिजली बनी, वर वृष्टि वीरों की अहा!

(१३७)

करवाल युत कर को उठा कर एक था यों कह रहा,
संग्राम से जो हट गया, धिक्कार है उसको महा।
जीना वृथा उसका जगत में, समर से जो डर गया,
है वीर वह जो युद्ध में, मारा अहा! या मर गया।

(१३८)

है एक कहता त्वेष में, मैं वीर हूं संग्राम से,
भागूं नहीं तन प्राण रहते, मृत्यु के शुभ नाम से।
जीवन मरण ऐ भाइयों! संसार में अनिवार्य है,
अतएव रण से विमुख होना, यह महा दुष्कार्य है।

(१३६)

सहसा प्रबल क्रोधान्ध होकर, वीर क्षत्रिय गण सभी,
अब यवन सेना मध्य झपटे, प्राण भय निज तज सभी,
वह आक्रमण अवलोक तत्क्षण, यवन-दल भी त्वेष में,
बहु शस्त्र परिचालन प्रखर, करने लगे आवेश में।

(१४०)

मृगराज क्रोधासक्त करता, दमन हस्ति-वरूथ का,
क्षत्रिय सकल करने लगे, संहार त्यों रिपु-यूथ का।
तत्क्षण उभय दल मध्य कितने शूर वीर महा बली,
गिरने लगे यों निहत हो, ज्यों पवन से पत्रावली।

(१४१)

धर मार काट प्रचण्ड रव, चहुं ओर श्रुत होने लगा,
जिसने समर बिच पग दिया, वह प्राण निज खोने लगा।
संग्राम सागर उर्मि देखा, बढ़ रही है वेग से,
वीराग्रणी जयमल घुसे, दल चीरते खर तेग से।

(१४२)

करता प्रभञ्जन सघन घन, जिस भांति अस्तव्यस्त है,
होता विहंगम-वृन्द ज्यों, खगराज से दुर्व्यस्त है।
त्यों हस्त-कौशल से अनेकों, वीर-रण-चातुर्य को,
कर ध्वन्स वे सन्निकट पहुंचे, शत्रु शिविर सुचर्य को।

(१४३)

निज हस्त लाघव से अनेकों, वीर गण संहारते,
वे और कुछ आगे बढ़े, तृण तुल्य अरि-दल मारते।
रिपु-सेन का उत्साह विक्रम, नाद से हरने लगे,
विद्युत् प्रहार प्रचण्ड इव, खर खड्ग दरसाने लगे।

(१४४)

करता कृपक ज्यों शस्य को, क्षण मात्र में उन्मूल है,
धुनियाँ तनिक श्रम से अहा! ज्यों ध्वन्स करता तूल है।
खर खड्ग की खर धार से, वीराग्रणी जयमल अहा!
वस कर दिया विध्वन्स त्यों, दल शाह अकबर का महा।

(१४५)

ज्यों पार्थ ने कुरु सेन को, विचलित किया था व्यूह में,
त्यों खलबली इनने मचादी, घोर शत्रु-समूह में।
हय गज पदादिक भूरि भू पर, काटते देखा गया,
उस समय वह उस समर में, सौभद्र सा लेखा गया।

(१४६)

अविराम शस्त्राघात से, था श्रान्त यद्यपि हो रहा,
था हस्त-लाघव से तदपि, वह शत्रु कितने खो रहा।
तज प्राण-भय यवनप अनेकों, मत्त हो रण-रङ्ग में,
करने लगे दुर्घात सहसा, खड्ग का प्रति अंग में।

(१४७)

पर वह परम उत्साह में, बल तेज से ताता हुआ,
था चकित शत्रुन कर रहा, निज शौर्य दरसाता हुआ।
तत्क्षण अलौकिक रण निपुणता, रिपुन दरसाते हुए,
देखे गये नृप उदयसिंह, संग्राम में आते हुए।

(१४८)

करते प्रदर्शित शौर्य ज्यों, खगराज पन्नग-व्यूह में,
करने लगे त्यों व्यक्त अपना, शौर्य शत्रु-समूह में।
यह देख क्षत्रिय गण सभी, सानन्द वीरावेश में,
झपटे विभुक्षित सिंह से, लड़ने लगे अति त्वेष में।

(१४९)

खर खड्ग शूल प्रचण्ड के, अति प्रबल तीक्षण घात से,
होने लगे रिपु ध्वन्स यों, जिमि शैल विद्युत् पात से।
विद्युत् प्रहार विलोक, उनका धैर्य रिपु खोने लगे,
अथवा प्रबल रण शौर्य लख, चित्रस्थ सब होने लगे।

(१५०)

करता प्रभञ्जन नीरदों को, शीघ्र अस्तव्यस्त ज्यों,
करने लगे क्षत्री सभी, दल शत्रु को दुर्ध्वस्त त्यों।
वे रिपु शिरों को काट यों, युद्धस्थली भरने लगे,
रण कालिका पूजन यथा, नर मुण्डसों करने लगे।

(१५१)

वह रुण्ड मुण्ड करादि अस्त, व्यस्त यों पड़ने लगे,
मानो प्रभञ्जन वेग से, तरु पुष्प युत झड़ने लगे।
कर रुण्ड से मण्डित धरा, अरि दल पदों से दल दिया,
सहसा प्रबल आवेग से, इक लिङ्ग का जय जय किया।

(१५२)

अविराम शस्त्राघात से, रिपु-सेन व्याकुल हो महा,
दुर्ध्वस्त प्राण-त्राण को, भागी पराजित हो अहा!
अवलोक निज सेना पराभव, शाह अकबर क्रुद्ध हो,
प्रोत्साहिता कर सेन निज, लड़ने लगे अवरुद्ध हो।

(१५३)

खर शूल परिघ कृपाण की, झङ्कार यों होने लगी,
मानो पुनः रण-चण्डिका, अति घोर निद्रा से जगी।
दुहुं ओर के सैनिक सभी, निज प्राण का भय छोड़ के,
लड़ने लगे फिर क्रोध से, जय के लिये जी जोड़ के।

(१५४)

फिर रुण्ड मुण्ड प्रचण्ड से, तत्काल भू भरने लगी,
बुझती हुई समराग्नि मानो, मुण्ड-आहुति से जगी।
हा! ठीक ऐसे ही समय, नृप उदयसिंह अरि जाल में,
अवरुद्ध शत्रुन में हुए, खल-कपटनीति विशाल में

(१५५)

कृष्णसिंह जयमल प्रभृति, तत्काल आहत हो गये,
अतएव वे संग्राम से, रक्षित जगह लाये गये ।
हा ! गोलियों की वृष्टि रिपु, करने लगे तत्काल ही,
दुर्भाग्य वश जिस पर पड़ी, लो समझ उसका काल ही ।

(१५६)

जो शत्रु अधुना व्यस्त हो, थे भागते संग्राम में,
दे योग वे हैं दमन करते, शत्रु निज रण ठाम में ।
थे एक तो अति अल्प संख्यक, वीर क्षत्री गण सभी,
तिसपर सकल सरदार उनके, थे हुए आहत अभी ।

(१५७)

अतएव वे स्वामी विना, तत्काल अस्तव्यस्त हो,
संग्राम भू को त्यागि निज निज, सद्म आये व्यस्त हो ।
यद्यपि कृतघ्नी पुरुष की, होती पराजय है सदा,
पर भाल में है जो लिखा, होता वही है सर्वदा ।

(१५८)

बस नगर में इस वृत्त के हा ! प्रकट होते ही अहा !
शुभ सौख्य समुचित खो गया, दुख-घन-घटा छाई महा ।
हा ! विजय का सामान सुन्दर, पूर्ण सज्जित था जहाँ,
चहुं ओर क्रन्दन शब्द ही है, श्रव्य अब होता वहाँ,

(१५९)

जहँ कल विजय-उल्लास-लतिका, झूमती थी मोद में,
तह आज क्रन्दन डालियाँ, हैं झूमती सब कोद में।
जहँ कल विजय-अभिलाप में, थे शूर गण यों कह रहे,
संग्राम से विचलित न होंगे, प्राण जबतक तन रहें।

(१६०)

पैशाच अकबर क्या अगर, देवेन्द्र भी प्रतिकूल हों,
नहिं एक पग पीछे टलैंगे, शूल पर यदि शूल हो।
जिसके वदन से देखिये तहँ, शब्द यह श्रुत हो रहा,
हा! हिन्दुओं के सूर्य का, अवसान प्रस्तुत हो रहा।

(१६१)

संग्राम की प्रलयाग्नि से जो वीर जीवित थे अभी,
अविराम श्रम से श्रमित थे, पर्यङ्क शायी हैं सभी।
इस भांति क्रन्दन के सिवा, हा! मार्ग ही था क्या उन्हें,
अवलम्ब जिसका ग्रहण कर, कुछ तोष जो होता उन्हें।

(१६२)

सुन यह दुखद सम्वाद वीरा, घूर्मि महि मूर्च्छित पड़ी,
शुचि सकुच चारु दुकूल की, थी सुध न उसको उस घड़ी।
हो भङ्ग मूर्छा किन्तु वह, चित्रस्थ सी हो कर खड़ी,
कहने लगी सत्वर स्वत., यों मुग्ध हो कर उस घड़ी।

(१६३)

हे दीन वत्सल ! दया निधि ! तुमने कहो यह क्या किया ?
चिरकाल सञ्चित-कीर्ति को, क्षण एक मध्य मिटा दिया।
जिस भव्य भारतवर्ष की थी, दीप्त चातुर्दिक छटा,
तिस स्वर्ण-छादित भूमि पर, हा ! छा गई काली घटा।

(१६४)

स्वाधीनता में जो सदा, सिरमौर था संसार में,
है गिर रहा प्रभुवर ! वही, पर वश्यता की गार में।
हे दुष्ट-दारण ! ईश ! शत्रु, अनीश-मद सारा हरो,
भयभीत भारतभूमि की, रक्षा करो रक्षा करो।

(१६५)

कहते हुए यह वाक्य हा ! कुछ अरुणिमा मुख आगई,
मानो प्रभाकर-प्रभाद्युति, शुचि इन्दु-छवि में छा गई।
बस शीघ्र वह उन्मत्त सी, निश्वास यों भरने लगी,
मानो शिवा संग्राम हित, अति घोर निद्रा से जगी।

(१६६)

तत्काल उसके हृदय में, कुछ ध्यान सहसा आगया,
जिससे कि पंकज वदन उसका, सद्य ही विकसा गया।
तत्क्षण मुत स्वर में अहा ! संकेत कर निज नाथ को,
कहने लगी वह भ्रान्त इव, सक्रोध मलते हाथ को।

(१६७)

प्राजेश! शृङ्खल बद्ध हो, पर सत्य यह बन्धन नहीं,
है वश्यताही सत्य बन्धन, देखना इतना वहीं।
वह पूर्व सञ्चित सत्व प्रभुवर! सत्व अपना जान के,
देना नही उसको कभी, कहिं हृदय में भय आन के।

(१६८)

कहते हुए यह वाक्य उसको, पुनः मूर्छा आगई,
अनुताप की तत्क्षण घटा, अति सघन मन पर छागई।
चैतन्यता वर शौर्यता सब, क्रोध उसका उस घड़ी,
विध्वन्स सहसा हो गये, थी व्यस्त वह निश भर पड़ी।

(१६९)

प्रत्यूष निज दरबार में, सब सैनिकों से त्वेष में,
कहने लगी यों मस्त हो, उत्कृष्ट वीरावेश में।
वीराग्रणी राणा तुम्हारे, यवन-बन्दी होगये,
धिक्कार! क्षत्रिय धर्म सारे, आज ही क्या खोगये।

(१७०)

ऐ वीर क्षत्री गण! समय है आज रोने का नहीं,
इस शोक पश्चाताप से, तो कार्य होने का नहीं।
अतएव बन्धन-मुक्त का, उपचार सत्वर कीजिये,
अनुशोक पश्चाताप अब, सब शीघ्र ही तज दीजिये।

(१७१)

हे द्वी पर थे निरन्तर युद्ध में सब वीर गण आहत हुये,
वर वक्तृता पर मन उन्होंने, इस लिये कुछ नहिं दिये।
जिस शस्त्रास्त्र घाव प्रचण्ड से, अति कठिन पीड़ा से भरे,
निस्तब्ध वे बैठे रहे, युग पाणि मस्तक पर धरे।

(१७२)

स्वार्थ उपरोक्त बातों का उसे, उत्तर किसी ने नहिं दिया,
अतएव तीक्षण त्वेष में, जलने लगा उसका हिया।
हे दु तत्काल क्षत्री रक्त उसके, अङ्ग में खलने लगा,
अनुशोक सारा खो गया, अति क्रोध उर बढ़ने लगा।

(१७३)

कहते उत्कृष्ट क्रोधावेश में, निश्वास लेती सर्प से,
कहने लगी अति त्वेष में, यों जाति क्षत्रिय दर्प से।
बस ! क्या आज ऐसा शूर कोई, है नहीं इक वास्ते,
हा ! मुक्त बन्धन जो करै, उनको किसी उपचारसे।

(१७४)

तत्क्ष हूं देखती यह दृश्य ईश्वर ! आज यह कैसा नया,
क्या क्षत्रियों के क्षत्रपन का, आज पाया उठ गया ?
तत्क्ष अथवा किसी के अङ्ग में, अब शौर्यता ही है नहीं ?
पर क्षत्रियों की शौर्यता, क्या क्षीण होती है कहीं ?

(१७५)

रण मध्य रिपु-दल-दलन ही, शुभ क्षत्रियों का धर्म है,

क्या आप गीता में बताया, ही नहीं यह कर्म है।

होता समर से भीत जो वह, नीच से भी नीच है,

क्षत्री वही यम से न जो, डरता कभी रण बीच है।

(१७६)

निज देश अरु निज मान, रक्षा ही परम कर्तव्य है,

ऐ ईश! गीता में तुम्हीं ने, यह दिया वक्तव्य है।

पर देखती हूं इस समय, सब दृश्य ही प्रतिकूल हैं,

प्रभु ज्ञान अब दीजे इन्हें, जो धर्म बैठे भूल है।

(१७७)

ऐ सैनिको! चेतो जरा, यों मन शिथिल क्यों हो रहा,

हा! देखिये चिर कीर्ति हैं, अब मन तुम्हारा खो रहा।

सोचो तनिक जागो उठो, हो भीरु इतने क्यों बने?

तुम वीर हो कर भी अहो! कादर्य में हो क्यों सने?

(१७८)

निस्तब्ध होकर बैठना, क्या क्षत्रियोचित धर्म है?

क्या समरसे भयभीत होना, शूर का सत्कर्म है?

जो यह दशा मैं जानती, तो प्रथम ही संग्राम मे,

प्राणेश के ही साथ जाती, और आती काम में।

(१७६)

क्षत्राणियों का हस्त-कौशल, शीघ्र शत्रुन को दिखा,
हा ! भेजतो यम-धाम को, रण-स्वाद रस उनको चखा।
पर मैं तुम्हारी राज्य भक्ति, के भरोसे रह गई,
धिक्कार शत धिक्कार ! हा ! मैं भूल-सरि में बह गई।

(१८०)

है दृश्य यह मम सामने तव, सर्वथा यद्यपि नया,
हो किन्तु क्षत्री तुम नहीं, यह आज परिचय मिल गया।
तुम लोग चाहे भीरु बन, संग्राम में जाओ नहीं,
पर क्या कभी हैं समर से, क्षत्राणियां डरती कहीं ?

(१८१)

वर वीर गण ! निज पूर्वजों का, ध्यान किञ्चित् तो करो,
शुचि कीर्ति उनकी सर्वदा को, धूरि धूसित क्यों करो ?
यह लीजिये मैं ही अकेली, समर में हूं जा रही,
लो सुनो यह धिक्कार मय, नभ-गिरा कैसी आ रही।

(१८२)

उन पापियों के पाप का, फल क्या, उन्हें दोगे नहीं ?
किस वंश में उत्पन्न हो ? क्या ध्यान इसका है कहीं ?
क्या आज तुम इन यवन गण से, सुहृद राणा को अहो !
उन्मुक्त बन्धन करन को, असमर्थ हो तुमही कहो ?

(१८३)

हो रिक्त कर आये यहाँ है रिक्त कर आना तुम्हें
शुचि कीर्ति या अपकीर्ति को, है छोड़ कर जाना तुम्हें ।
अतएव उज्वल कीर्ति निज, संसार में विकसित करो ।
जीवित रहो या कट मरो, पर कार्य यह निश्चित करो ।

(१८४)

रानी कथित यह वाक्य सहसा, क्षत्रियों के चित्त को,
उत्तेज युत विकसित किया, उत्साह के आदित्य को ।
तत्काल इक स्वर में सभी, इक लिङ्ग की जय जय कहै,
उत्कृष्ट भीषण शब्द में फिर वाक्य मंगलमय कहै।

(१८५)

मालेश्वरी ! इस भाँतितुम अनुशोक हो क्यों कर रही,
लाते अभी हैं नृपति को, कर शत्रु से खाली मही ।
हा ! भीरु कह करके हमें, जो आपने लज्जित किया,
क्या स्वप्न में भी शत्रुओं को पीठ था हमने दिया ?

(१८६)

लो खड्ग यह, शिर काट लो, पर भीरु शब्दों से हमै,
संकेत नहिं करना अहो ! क्या मान देना है हमें ।
रण में हमें ऐ भाइयो इक सेन नायक चाहिये,
सो मिल गया ऐ वीर गण ! निज शौर्य अब दरसाइये ।

(१८७)

मातेश्वरी हैं सेन नायक, भाइयो डरियो नहीं,
होवे पराजित काल भी, यदि समर में आवे कहीं ।
यदि समर से इस वार अकबर विमुख हो भागा नहीं,
सच मानिये उसको अवश, यम धाम भेजूंगा वहीं ।

(१८८)

ऐ वीर गण ! कर्तव्य पर निज दृढ़ रहो योंही सदा,
थी आश उत्तर की मुझे तुम से यही शुचि सर्वदा ।
वर वीर गण ! तुम हिन्द की वर वास्तविक संतान हो,
क्षत्रिय रुधिर का स्रोत अब भी शेष है तुम मान्य हो ।

(१८९)

पर देर अब क्यों कर रहे हो, आइये कटि बद्ध हो,
इन दुष्ट यवनों को सुला दें समर में अवरुद्ध हो ।
निज शीश औ रिपु शीश का, शुभ हिन्द हित बलिदान दे,
रक्षा करें निज देश की, अब परम प्यारे प्रान दे ।

(१९०)

तैयार हैं तैयार हम संग्राम करने के लिये,
यह देखिये तैयार हैं, खर खड्ग कर धारण किये ।
अब बात करने का समय, मातेश्वरी!! नहिं शेष है,
देखा नहीं जाता हमारे पूज्य प्रभुका क्लेश है ।

(१६१)

तब वीर वीरा ने पुरुष का. वेष रण कारण किया,

सर्वाङ्ग पौलादी जिरह बख्तर, कठिन धारण किया।

शस्त्रास्त्र सज्जित अश्व चढ़ि, तत्काल क्रोधावेश में,

हुङ्कार दै सम्मुख चली, संग्राम को अति त्वेष में।

(१६२)

दल रक्षिका वीराङ्गना अवलोक के रण रंग में,

कहने लगे यों यवन गण, तत्काल निन्दित व्यङ्ग में।

लो देखिये यह क्षीण अवला, प्राण देनेके लिये,

है आ रही इस समर में, कर शूल असि धारण किये।

(१६३)

निज प्राण ही देना इसे, इस भांति यदि अनिवार्य था,

आती अकेली किन्तु क्या इन कायरों का कार्य था।

टुक ध्यान दै इस मूर्खिणी की, मूर्खता तो देखिये,

है आ रही इत को चली, यह ढीठता तो पेखिये।

(१६४)

इतनी असंख्यक सेन पैं सेनाल्प इस की क्या कभी,

है ठहर सकती निमिषि भी, धर ध्यान सोचो तो सभी।

इस भाँति निन्दित व्यङ्ग में, सोत्साह थे यवनप सभी,

पहुंची प्रवल आवेग में, वीराङ्गना वीरा तभी।

(१९५)

क्षत्री विमुक्षित सिंह इव, तत्काल झपटे क्रुद्ध हो,

कर खड्ग तत्क्षण ऐंच द्रुत, लड़ने लगे अवरुद्ध हो।

रिपु सेन भी तत्काल ही, अति तीव्र विद्युत् वेगसे,

हुंकार दे लड़ने लगी, अति क्रोध के आवेग से।

(१९६)

होने लगी तत्काल तोपों की भयानक मार थी

चहुंधा निरन्तर गोलियों की हो रही बौछार थी।

अति प्रबल धूम्रावेग में, रवि रश्मि सहसा छिप गई,

उड़ती हुई पग रेणु भी तत्क्षण उसी में मिल गई।

(१९७)

बस प्रबल शस्त्राघात से, कटने लगे कितने बली,

अति तीव्र धारा रक्त की, तत्क्षण धरा पर वह चली।

रवि राशी को वह धूम की थी सघनता निगली हुई,

उड़ती हुई पगरेणु भी थी धूम्र मध्य मिली हुई।

(१९८)

है रक्त धारा ही धरा पर, पावसी सरिता महा,

वहते हुए शव कर पदादिक, जंतु जलचर हैं अहा!

तत्काल वह वीराङ्गना भी शत्रु सेन समक्ष को,

झपटी विमुक्षित वाज इव, रण काटती रिपु पक्ष को।

(१९९)

गम्भीर नीरद वृन्द में, जैसे चमकती चंचला,
करके प्रदर्शित दीप्ति शुचि, है व्यक्त करती निज कला।
करती हुई हुंकार शत्रुन प्राण को हरती हुई,
त्यों शत्रु शिविर समीप अपने चरण कज धरती हुई।

(२००)

ज्यों भेद जाती रश्मि रवि अति अंधकार समूह को,
रण विज्ञ वीरा घुस गई त्यों भेद शत्रुन व्यूह को।
रण दक्ष लाखों वीर थे, पर गति न उसकी रुक सकी,
चित्रस्थ से सब रह गये, हिम्मत किसी ने कुछ न की

(२०१)

ज्यों रक्त नेत्रा शिवा तीक्ष्ण शूल कर धारण किये,
वर वीर महिषासुर प्रभृति, संग्राम में दारण किये।
सक्रुद्ध तद्वत् देवि वीरा, चण्ड शूल कृपाण लै,
युद्धस्थली भरने लगी, बहु शत्रुओं के प्राण लै।

(२०२)

करती हुई वह खड्ग चालन प्रलय कालिक स्फूर्ति से,
फिरने लगी संग्राम में चहुं ओर कृत्या मूर्ति से।
जो शत्रु थे उसके निकट अति, प्रबल कोपाकार में,
होते धरा शायी सपदि, वे विज्ञु खड्ग प्रहार में।

खर खड्ग का आघात उसने कब किधर मारा किसे,

बस निहत होकर ही विपक्षी वृन्द ने जाना उसे।

कर कब कटा शिर कब कटा पग कब कटा धड़ कब गिरा,

होता नहीं था ज्ञात हा! यह दृश्य था अद्भुत निरा।

(२०४)

करता प्रभञ्जन ध्वंस ज्यों फल पूर्ण तरुवर-वृन्द को,

करने लगी संहार त्यों वीराङ्गना अरि-वृन्द को।

तत्काल घन इव गर्जते, कुछ वीर क्षत्री भी अहा!

व्रण-पूर्ण उसके सन्निकट, पहुंचे अतुल छवि में महा।

(२०५)

बस शीघ्र विद्युत् वेगसे, अरि-शिविर में वे धस गये,

पहुंचे सपदि राणा निकट, जयलाभ से मंगल मये।

तत्काल वीरा अश्व तज, शुचि परम प्रेम सुभाव से,

कर मुक्त बन्धन से उन्हें निज सद्म आई चाव से।

(२०६)

चित्रस्थ से निस्तब्ध हो, सब शत्रु सकुचित रह गये

अनुशोक पारावार में तत्काल वे सब वह गये।

तू धन्य वीरा! धन्य तेरी, शौर्यता अति धन्य है,

करती तुम्हींसी नारियां यों कठिन कार्य अनन्य हैं।